International Journal of Advanced Education and Research
ISSN: 2455-5746, Impact Factor: RJIF 5.34
www.alleducationjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 110-111

भट्टिकाव्य एवं पाणिनीय व्याकरण के ध्वनि विचार का तुलनात्मक अध्ययन

नवीन

शोधछात्रा, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र, गांव खानपुरा कलां, जिला झज्जर, हरियाणा, भारत

प्रस्तावना

भट्टिकाव्य महाकवि भट्टि की कृति है। इस महाकाव्य के 22 सर्गो में श्री राम के जन्म से लेकर राज्यभिषेक तक की 'रामायण कथा' को निबद्ध किया है। इस महाकाव्य का उपजीव्य ग्रंथ वाल्मीकि–रामायण है। कथा भाग के उपकथन की दृष्टि से यह महाकाव्य 22 सर्गो में विभाजित है तथा महाकाव्य के लक्षणों से पूर्णतया समन्वित है। रचना का मुख्य उद्देश्य व्याकरण एवं साहित्य के लक्षणों को लक्ष्य द्वारा उपस्थित करना है।

लक्ष्य एवं लक्षणों को उपस्थित करने की दृष्टि से यह महाकाव्य चार काण्डों में विभाजित है जैसा कि भट्टि के संकेत से ही स्पष्ट है कि उसकी रचना का मुख्य उदेश्य व्याकरण के नियमों, ध्वनि नियमों की जानकारी देना है। व्याकरण के निमम उसकी भाषा में एक विशेष रूप में निबद्ध किए गए है।

ध्वनि– संस्कृत व्याकरण में वर्णो की संख्या 63 मानी गई है।[1] भट्टिकाव्य में 51 वर्ण मिलते है, इनमें 13 स्वर तथा 38 व्यंजन है। स्वरों में भट्टिकाव्य में ऋ तथा लृ दुर्लभ ध्वनियां हैं 'ऋ' भट्टिकाव्य में 9 बार तथा लृ केवल 4 बार प्रयुक्त है। 'लृ' का प्रयोग वैदिक भाषा में बहुत अधिक पाया जाता है। लौकिक संस्कृत में इसका प्रयोग निरंतर कम होता जा रहा है। व्यंजनों में 'झ' वर्ण का पांच बार, जिह्वामूलीय तथा उपध्यमानीय का एक–एक बार प्रयोग हुआ है। अनुनासिक भट्टिकाव्य में 3 बार आया है।

ध्वनि विचार

ध्वनि भट्टिकाव्य में जो ध्वनियां मिलती है वे इसक प्रकार है–

			ह्रस्व		दीर्घ	
	कण्ठ्य		अ		आ	
	तालव्य		इ		ई	
	समानाक्षर	ओष्ठ्य	उ		ऊ	
	पूर्धन्य		ऋ		ऋ	
	दन्तय		लृ		–	
सन्ध्यक्षर	तालव्य		ए		ऐ	
	ओष्ठ्य		ओ		औ	
	कण्ठ्य	क्	ख्	ग्	घ्	ङ्
	तालव्य	च्	छ्	ज्	झ्	ञ
स्पर्श	मूर्धन्य	ट्	ठ्	ड्	द्	ण्
	दन्त्य	त्	थ्	द्	ध्	न्
	ओष्ठ्य	प्	फ्	ब्	भ्	म्
	तालव्य		य्			
अन्तस्थः	मूर्धन्य		र्			
	दन्त्य		ल् संवार नाद, घोष अल्पप्राण			
	ओष्ठ्य		व्			
	तालव्य		श्			
उष्म	मूर्धन्य		ष् विवार श्वास, अघोष महाप्राण			
	दन्त्य		स्			
महाप्राण	कण्ठ्य		ह			
	अनुनासिक					
	अनुस्वार		.			
	विर्सजनीय :					
	जिह्वामूलीय		ᳵ क ᳵ ख			
	उपध्मानीय		ᳶ प ᳶ फ			

ध्वन्यात्मक रूप से स्वतंत्र संस्कृत वर्णो की संख्या के विषय में बहुत ही वैचारिक मतभेद है। पाणिनि– वर्णोच्चारण– शिक्षा में वर्णो की संख्या 63 निर्दिष्ट है। ऋक्–प्रातिशाख्य[2] में 57, तै० प्रा० में[3] 60, वा०प्रा०[4] में 65 वर्ण मिलते है। संहिताओं के आन्तरिक प्रमाणों के अनुसार ऋग्वेद की भाषा में 52 वर्ण तथा अथर्ववेद की भाषा में 49 वर्ण पाए जाते है।[5]

अ

अ भट्टिकाव्य का सबसे अधिक प्रयोग में आने वाला सामान्य स्वर है। अन्य स्वरों की अपेक्षा भट्टिकाव्य में इसका प्रयोग 20 गुणा अधिक है। पाणिनी[6] इसे कण्ठ्य ध्वनि मानते है। इसके आभ्यन्तर प्रयत्न के विषय में अनेक मतभेद है। पाणिनी तथा कुछ प्रातिशाख्यों के मतानुसार 'अ' का आभ्यन्तर प्रयत्न संवृत है। ह्विटने के अनुसार अत्यधिक विकृत स्वर है। ह्विटने का यह विचार पाणिनी के 'अ' सूत्र पर आधारित है

आ – भट्टिकाव्य में आ का प्रयोग 'अ' के आधे से भी कम है। पाणिनीय नियमानुसार यह कण्ठ्य ध्वनि है। तथा इसका आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत है। अथर्व प्रा० के अनुसार आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत्ततम है[9]

इ, ई – पाणिनी के अनुसार इ तथा ई तालव्य ध्वनियां है। तथा इनका आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत है। ये तालव्य व्यंजन श्रेणी में अपना अर्द्धस्वर 'य' रखते है। तै०प्रा० के अनुसार इसके उच्चारण के समय जिह्वा का मध्य भाग पूर्ण रूप से तालु का स्पर्श करता है।

उ,ऊ – उ और ऊ का प्रयोग भट्टिकाव्य में अ तथा आ की अपेक्षा बहुत कम है। ये ओष्ठ्य् ध्वनियां हैं पाणिनी तथा प्रातिशाख्यों के अनुसार इनका आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत है।

ऋ, ऋ– हस्व ऋ का प्रयोग भट्टिकाव्य में प्रत्येक अवस्था में प्रचूर रूप से मिलता है। इसके उच्चारण के विषय में आधुनिक तथा प्राचीन वैयाकरणों में बहुत मतभेद है। ऋ०प्रा०, अथर्व प्रा०, वा० प्रा०, तै०प्रा० तथा ऋक् तन्त्र[12] 'ऋ' का उच्चारण स्थान जिह्वा का मूल भाग मानते है। पाणिनीय शिक्षा[13] में इसे मूर्धन्य कहा गया है ।

लृ– लृ लौकिक भाषा की अति दुर्लभ ध्वनि है, जबकि वैदिक भाषा में इसका पर्याप्त प्रयोग मिलता है। भट्टिकाव्य में यह केवल 4 बार 'कलृप' धातु के रूपों में मिलती है। यह दन्त्य ध्वनि हैं अथर्व प्रातिशाख्य[14] के अनुसार 'लृ' में ल् का अधिक अंश होने के कारण यह शुद्ध स्वर नहीं है।

ए,ओ, ऐ, औ– भट्टिकाव्य में ए, ओ, ऐ, औ अधिक प्रयुक्त है। इनका आभ्यन्तर प्रयत्न विवृत है, लेकिन ऋक्, प्रा०, तथा अथर्व प्रा० ए, ओ को अधिक विवृत मानते है। पाणिनी[16] के अनुसार ए, ऐ, कण्ठ, तालव्य ध्वनियां है तथा ओ, औ, कष्ठौष्ठ्य ध्वनियां

कवर्ग– अन्य चार कण्ठ्य ध्वनियों की अपेक्षा भट्टिकाव्य में 'क्' अधिक प्रयुक्त है। ग् तथा ङ् की अपेक्षा ख् तथा घ् की प्रयोग भट्टिकाव्य में अत्यल्प होता है। पाणिनी के अनुसार कवर्गीय ध्वनियों का उच्चारण स्थान कण्ठ है।[17]

चवर्ग– च् तथा ज् भटिकाव्य की बहुत सामान्य ध्वनियां है। च् तथा ज् की अपेक्षा छ् का प्रयोग भट्टिकाव्य में 10 गुणा कम है। ज् का प्रयोग छ् की अपेक्षा अधिक है।

झ– यह भट्टिकाव्य की दुर्लभ ध्वनि है। यह पूरे काव्य में केवल 5 बार प्रयुक्त हुई है। वैदिक भाषा में भी इस ध्वनि का प्रयोग बहुत कम है। ऋग्वेद में एक बार तथा अथर्ववेद में बिल्कुल नही मिलती।[18] प्रातिशाख्यों तथा पाणिनी के अनुसार चवर्गीय ध्वनियां तालव्य है।

टवर्ग– टवर्ग में ण् भट्टिकाव्य की बहुत अधिक प्रयुक्त होने वाली ध्वनि है। यह अन्य चार वर्णो को मिलाकर भी उनसे अधिक प्रयुक्त होती है। पाणिनी के अनुसार ये ध्वनियां मूर्धन्य है। जिनकी उत्पत्ति मूर्धा से होती है[19]

तवर्ग ध्वनियां भट्टिकाव्य में तवर्ग ध्वनियों का प्रयोग अन्य चारों ध्वनियों के सम्मिलित प्रयोग के बराबर हुआ है । तवर्ग में भी न् ध्वनि भट्टिकाव्य की बहुत सामान्य ध्वनि है। कुछ प्रातिशाख्यकारों एवक वैयाकरणों के अनुसार तवर्ग का उच्चारण जिह्वा के अग्र भाग का दाँतों से स्पर्श होने पर होता है।

पवर्ग ध्वनियां– भट्टिकाव्य में 'ब' की अपेक्षा प् और भ् का अधिक प्रयोग है। फ् का अपेक्षाकृत कम प्रयोग है। 'म' का प्रयोग अन्य चारों वर्णो की अनुनासिक ध्वनियों के बराबर ही है। केवल अथर्व प्रा० तथा तै० प्रा० के भाष्यकारों के अनुसार पवर्ग का उच्चारण स्थान उपरि ओष्ठ है तथा उच्चारण निचले ओष्ठ से होता है।[21]

अर्द्धस्वर – य् की अपेक्षा व् भट्टिकाव्य की अधिक प्रयोग में आने वाली ध्वनि है। सामान्यतः य् तालव्य ध्वनि है।[22] तैतिरीय प्रातिशाख्य के अनुसार भ् का उच्चारण जिह्वा के मध्य भाग का तालु से स्पर्श होने पर होता है[23] व् के उच्चारण के विषय में अनेक विचार व्यक्त किए गए है। पाणिनी के अनुसार 'व्' की उत्पत्ति स्थान दन्तोष्ठ है[24]

र् ल्– र् की अपेक्षा ल् भट्टिकाव्य में दुर्लभ ध्वनि है। र् का प्रयोग ल् की अपेक्षा 7 गुणा अधिक हुआ है। पाणिनी के अनुसार 'र' मूर्धन्य ध्वनि तथा 'ल्' दन्त्य ध्वनि है[25] लेकिन दोनो ध्वनियों के उच्चारण स्थान के विषय में बहुत मतभेद है। पा० शिक्षा, वाजसनेयि प्रातिशाख्य के अनुसार ल् दन्त्य ध्वनि है। परंतु ऋक्– प्रातिशाख्य, अथर्व प्रातिशाख्य के अनुसार ल् का स्थान दन्तमूल है[26]

उष्म वर्ण – अन्य दो उष्म श् और ष् अपेक्षा स् भट्टिकाव्य में अधिक प्रयुक्त होने वाली ध्वनि है। सभी भारतीय विद्वानों के अनुसार 'स' दन्त्य ध्वनि है। लेकिन ऋ०प्रा० के अनुसार दन्तमूल है[27] प्रातिशाख्यों, पाणिनि के अनुसार श् का उच्चारण स्थान तालु है अतः यह तालव्य है। 'ष्' का उच्चारण स्थान मूर्धा है।

ह्– भट्टिकाव्य की ह् ध्वनि कण्ठ्य है। ऋक्त प्रातिशाख्य के अनुसार ह् का उच्चारण स्थान उरस है। तैतिरीय प्रातिशाख्य के अनुसार हकार का वही स्थान मानते है जो उसके परवर्ती स्वर के प्रारम्भिक भाग का है।[28] विर्सजनीय भी कण्ठ्य ध्वनि हे।

जिह्वामूलीय ध्वनिः– भट्टिकाव्य में जिह्वामूलीय ध्वनि का केवल एक ही प्रयोग मिलता है। वानराः कुलशैलाभः । अर्थर्व प्रातिशाख्य के अनुसार इसका उच्चारण ऊपरी जबड़े के मूल भाग से होता है।[30]

उपध्मानीय : इस ध्वनि का भी भट्टिकाव्य में केवल एक प्रयोग मिलता है यथा
कुलशैलाभः प्रसध्यायुधशीकरम्[31]

इस ध्वनि का उच्चारण स्थान ओष्ठ है। इसका उच्चारण पूर्व स्वर के समान होता है। ध्वनि का स्थान वही है, जो इसके पूर्ववर्त्ती स्वर का होता है।[32]

अनुस्वार– भट्टिकाव्य में इस ध्वनि का प्रयोग व्यंजन से पहले म् को अनुस्वार में परिवर्तित करके मिलता है। पा० तथा अथर्व प्रातिशाख्य के अनुसार यह नासिक्य ध्वनि है तथा नासिका से उच्चरित होती है।[33]

अनुनासिक– भट्टिकाव्य में अनुनासिक ध्वनि का प्रयोग 3 बार मिलता है। इसका उच्चारण नासिका तथा मुँह से होता है।[34] ऋक्त प्रातिशाख्य, वाजसनेयि प्रातिशाख्य, सिद्धान्त कौमुदी के अनुसार अनुस्वार तथा अनुनासिक अलग–अलग ध्वनियां है। जबकि हिव्टने[35] के अनुसार इनमें कोई भेद नहीं है। मैक्डानल[36] प्राचीन वैयाकरणों के मत को स्वीकार करता है।

ग्रन्थ सूची

1. पाणिनीय शिक्षा 3.4
2. ऋक्–प्रातिशाख्य, पृ० 30–32, 1.1–3, 1.5, 1.6–10
3. तैतिरीय प्रातिशाख्य 1.1–9, 1.3.4.8.8.2.5.13.16.21.12.15
4. वाजसनेयि प्रातिशाख्य 8.38
5- The Language of the Apparva Veda by Dr. Yajan Veer Delhi, P. 12
6. पा० शिक्षा, 22
7. पा० सूत्र, 8.4.68 अथर्व प्रा० 1.36 वा प्रा० 1.72 वे सट, पृ० 6
8. अष्टाध्यायी 8.3.6.8
9. अथर्व प्रा० 1.35.
10. तै० प्रा० 11.22
11. पा० शिक्षा 35, अथर्व प्रा० 1.32, प्रा० 11.24
12. ऋक् प्रा० 1.41, अथर्व प्रा० 1.26, वा० प्रा० 1.65, तै० प्रा० 11.18 ऋक० तं० 4
13. पा० शिक्षा 11.
14. अथर्व प्रा० 1.39
15. ऋक् प्रा० 1.42, अथर्व प्रा० 1.34
16. पा० शिक्षा, XII. XIII.
17. पा० शिक्षा 22, सिद्धान्तकौमुदी, 10
18. पृ० 42
19. पा० शिक्षा 17, सिद्धान्तकौमुदी, पृ०17
20. ऋ० प्रा० 1.24, वा प्रा० 1.76, 1.69 ऋ० तन्त्र 7, पा० शिक्षा 17, सिद्धान्त कौमुदी, पृ० 17
21. ऋ० प्रा० 1.47, वा० प्रा०, 1.70
22. पा० शिक्षा, 17
23. तै० प्रा० 11.40
24. पा० शिक्षा 18, आपिशली शिक्षा 1.16–17, सिद्धान्तकौमुदी पृ० 17
25. पा० शिक्षा 17, सिद्धान्तकौमुदी, पृ० 17
26. पाठ शिक्षा, 17, वा० प्रा० 1.69, ऋ प्रा० 1.45
27. पा० शिक्षा, 17, यास्क शिक्ष 212, ऋ० प्रा० 1.9–10
28. पा० शिक्षा 17, अथर्व प्रा० 1.19
29. भट्टिकाव्य प .59
30. सि०कौ० 1.1.9 पर तै० प्रा० 1.18
31. भ० काव्य, प .59
32. पा० शिक्षा 17, सि० कौ० 1.1.9
33. पाणिनि 8.3.23, अथर्व प्रा० 1.26
34. अष्टा० 1.18
35. Skt Gr.P 25
36. Ved Gr. Stn P. 17